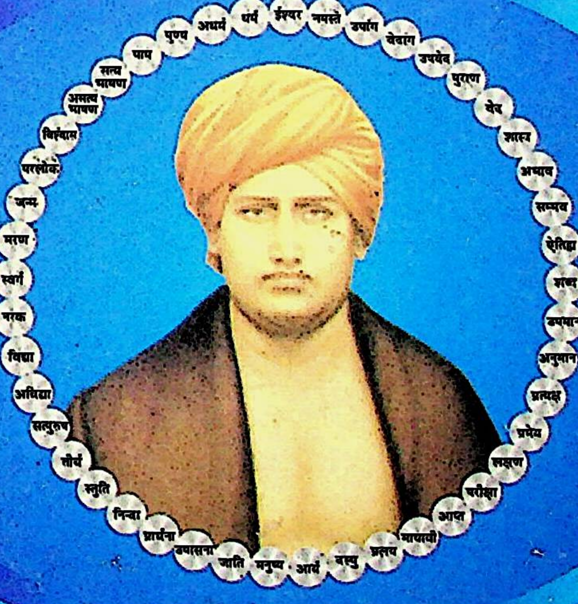
आर्योद्देश्यरत्नमाला



श्रीमद्दयानन्द सरस्वती स्वामी निर्मिता

प्रचार योजना में सहयोग करें

उक्त लघु पुस्तिका की भाँति हम अनेक पुस्तिकायें प्रचारार्थ प्रकाशित करना चाहते हैं। यह पुनीत कार्य आपके सहयोग द्वारा ही सम्भव है।

जो सहयोगी ५१००/- रु० प्रदान करेंगे उनका चित्र व नाम पाँच सहस्त्र प्रतियों पर अंकित करके न्यून मूल्य पर विक्रय की जायेंगी तथा इसकी एक सौ प्रतियाँ आपको भिजवाई जायेंगी।

इससे अधिक राशि भी प्रदान की जा सकती है। इसके लिए आप सम्पर्क करें–०९४१४०३४०७२, ०९८८७४५२९५९ पर।

आशा है इस प्रचार कार्य में सहयोग करके आप यश के भागी बनेंगे।

–प्रभाकरदेव आर्य

* ओ३म् *

आर्योद्देश्यरत्नमाला

श्रीमद्दयानन्दसरस्वतीस्वामिनिर्मिता

ईश्वरादितत्त्वलक्षणप्रकाशिका

आर्यभाषाप्रकाशोज्ज्वला

प्रकाशक

श्री घूडमल प्रहलादकुमार आर्य धर्मार्थ न्यास
हिण्डौन सिटी, (राज०)-३२२२३०

प्रकाशक		**श्री घूड़मल प्रहलादकुमार आर्य धर्मार्थ न्यास** 'अभ्युदय' भवन, अग्रसेन कन्या महाविद्यालय मार्ग, स्टेशन रोड, हिण्डौन सिटी, (राज०)- ३२२ २३० चलभाष : ०९४१४०३४०७२, ०९८८७४५२९५९
प्रकाशित प्रतियाँ	:	३५०००
मूल्य	:	४.०० रुपये
लेज़रटाईपसेटिंग	:	आर्य लेज़र प्रिंट्सहिण्डौन सिटी, राजस्थान
मुद्रक	:	अजय प्रिण्टर्सशहादरा दिल्ली - ११० ०३४

॥ ओ३म् ॥

आर्योद्देश्यरत्नमाला

१. **ईश्वर**—जिसके गुण, कर्म, स्वभाव और स्वरूप सत्य ही हैं, जो केवल चेतनमात्र वस्तु तथा जो एक अद्वितीय, सर्वशक्तिमान, निराकार, सर्वत्र व्यापक, अनादि और अनन्त सत्य गुणवाला है, और जिसका स्वभाव अविनाशी, ज्ञानी, आनन्दी, शुद्ध, न्यायकारी, दयालु और अजन्मादि है, जिसका कर्म जगत् की उत्पत्ति, पालन और विनाश करना तथा सब जीवों को पाप-पुण्य के फल ठीक-ठीक पहुँचाना है, उसको '**ईश्वर**' कहते हैं।

२. **धर्म**— ज़िसका स्वरूप ईश्वर की आज्ञा का यथावत् पालन, पक्षपातरहित न्याय, सर्वहित करना है, जोकि प्रत्यक्षादि प्रमाणों से सुपरीक्षित और वेदोक्त होने से सब मनुष्यों के लिये एक और मानने योग्य है, उसको '**धर्म**' कहते है।

३. **अधर्म**— जिसका स्वरूप ईश्वर की आज्ञा को छोड़ना और पक्षपातसहित अन्यायी होके बिना परीक्षा करके अपना ही हित करना है, जो अविद्या–हठ अभिमान, क्रूरतादि दोषयुक्त होने के कारण वेदविद्या के विरुद्ध है और सब मनुष्यों को छोड़ने के योग्य है, वह '**अधर्म**' कहाता है।

४ **पुण्य**— जिसका स्वरूप विद्यादि शुभ

गुणों का करना है,उसको 'पुण्य' कहते हैं।

५. **पाप**–जो पुण्य से उल्टा और मिथ्याभाषणादि करना है,उसको '**पाप**' कहते हैं।

६. **सत्यभाषण**– जैसा कुछ अपने आत्मा में हो और असम्भवादि दोषों से रहित करके वैसा ही सत्य बोले, '**सत्यभाषण**' कहते हैं।

७. **मिथ्याभाषण**–जोकि सत्य भाषण अर्थात् सत्य बोलने के विरुद्ध है, उसको '**मिथ्याभाषण**' कहते हैं।

८. **विश्वास**–जिसका मूल अर्थ और फल निश्चय करके सत्य ही हो, उसका नाम '**विश्वास**' है।

९. **अविश्वास**— जो विश्वास से उल्टा है, जिसका तत्त्व अर्थ न हो, वह '**अविश्वास**' कहाता है।

१०. **परलोक**— जिसमें सत्यविद्या से परमेश्वर की प्राप्तिपूर्वक इस जन्म वा पुनर्जन्म और मोक्ष में परमसुख प्राप्त होना है, उसको '**परलोक**' कहते हैं।

११. **अपरलोक**— जो परलोक से उल्टा जिसमें दुःख विशेष भोगना होता है, वह '**अपरलोक**' कहाता है।

१२. **जन्म**— जिसमें किसी शरीर के साथ संयुक्त होके जीव कर्म करने में समर्थ होता है, उसको '**जन्म**' कहते हैं।

१३. **मरण**— जिस शरीर को प्राप्त होकर

जीव क्रिया करता है, उस शरीर और जीव का किसी काल में जो वियोग हो जाना है, उसको '**मरण**' कहते हैं।

१४. **स्वर्ग**— जो विशेष सुख और सुख की सामग्री का जीव को प्राप्त होना है, वह '**स्वर्ग**' कहाता है।

१५. **नरक**— जो विशेष दुःख और दुःख की सामग्री को जीव का प्राप्त होना है, उसको '**नरक**' कहते हैं।

१६. **विद्या**— जिसमें ईश्वर से लेके पृथिवीपर्यन्त पदार्थों का सत्य विज्ञान होकर उनसे यथायोग्य उपकार लेना होता है, इसका नाम '**विद्या**' है।

१७. **अविद्या**— जो विद्या से विपरीत,

भ्रम, अन्धकार और अज्ञानरूप है, इसलिए इसे 'अविद्या' कहते हैं।

१८. **सत्पुरुष**–जो सत्यप्रिय, धर्मात्मा, विद्वान्, सबके हितकारी और महाशय होते हैं, वे 'सत्यपुरुष' कहाते हैं।

१९. **सत्सङ्ग**– जिस करके झूठ से छूटके सत्य की ही प्राप्ति होती है उसको और जिस करके पापों में जीव फँसे उसको 'कुसङ्ग' कहते हैं।

२०. **तीर्थ**–जितने विद्याभ्यास, सुविचार, ईश्वरोपासना, धर्मानुष्ठान, सत्य का संग, ब्रह्मचर्य, जितेन्द्रियतादि उत्तम कर्म हैं, वे सब 'तीर्थ' कहलाते हैं क्योंकि इनके द्वारा जीव दुःखसागर से तर सकता है।

२१. **स्तुति**— जो ईश्वर वा किसी दूसरे पदार्थ के गुणज्ञान, कथन, श्रवण और सत्यभाषण करना है, वह '**स्तुति**' कहलाती हैं।

२२. **स्तुति का फल**— जो गुण-ज्ञान आदि का कथन करने से गुणवाले पदार्थ में प्रीति होती है, यह '**स्तुति का फल**' कहलाता है।

२३. **निन्दा**— जो मिथ्याज्ञान, मिथ्याभाषण, झूठ में आग्रहादि क्रिया का नाम है कि जिससे गुण छोड़कर उनके स्थान में अवगुण लगाना होता है, वह '**निन्दा**' कहलाती है।

२४. **प्रार्थना**— अपने पूर्ण पुरुषार्थ के

उपरान्त उत्तम कर्मों की सिद्धि के लिए परमेश्वर वा किसी सामर्थ्यवाले मनुष्य का सहाय लेने को '**प्रार्थना**' कहते हैं।

२५. **प्रार्थना का फल**—अभिमान का नाश, आत्मा में आर्द्रता, गुण ग्रहण में पुरुषार्थ और अत्यन्त प्रीति का होना '**प्रार्थना का फल**' है।

२६. **उपासना**—जिसके द्वारा ईश्वर ही के आनन्दस्वरूप में अपने आत्मा को मग्न करना है, वह कहाती है।

२७. **निर्गुणोपासना**—शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध, संयोग, वियोग, हल्का, भारी, अविद्या, जन्म, मरण, और दुःख आदि गुणों से रहित परमात्मा को जानकर जो उसकी

उपासना करनी है, उसको 'निर्गुणोपासना' कहते हैं।

२८. **सगुणोपासना**—जिसको सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान्, शुद्ध, नित्य, आनन्दमय, सर्वव्यापक, एक, सनातन, सर्वकर्त्ता, सर्वाधार, सर्वस्वामी, सर्वनियन्ता, सर्वान्तर्यामी, मंगलमय, सर्वानन्दप्रद, सर्वपिता, सब जगत् का रचनेवाला, न्यायकारी, दयालु आदि सत्य गुणों से युक्त जानकर जो ईश्वर की उपासना करना है, सो '**सगुणोपासना**' कहलाती है।

२९. **मुक्ति**—अर्थात् जिससे सब बुरे कामों और जन्म-मरणादि दुःखसागर से छूटकर, सुखरूप परमेश्वर को प्राप्त होके सुख में ही रहना है, वह '**मुक्ति**' कहलाती

है।

३०. **मुक्ति के साधन**— जो पूर्वोक्त ईश्वर की कृपा, स्तुति, प्रार्थना और उपासना का करना तथा धर्म का आचरण और पुण्य का करना, सत्संग, विश्वास, तीर्थसेवन, सत्पुरुषों का संग, परोपकार करना, सब अच्छे कामों का करना, सब दुष्ट कर्मों से अलग रहना है, ये सब '**मुक्ति के साधन**' कहलाते हैं।

३१. **कर्त्ता**— जो स्वतन्त्रता से कर्मों का करनेवाला है, अर्थात् जिसके स्वाधीन सब साधन होते हैं, वह '**कर्त्ता**' कहलाता है।

३२. **कारण**— जिसको ग्रहण करके ही करनेवाला कोई कार्य कर वा चीज बना

सकता है अर्थात् जिसके बिना कोई चीज बन ही नहीं सकती, वह 'कारण' कहलाता है, सो तीन प्रकार का है।

३३. **उपादानकारण**—जिसको ग्रहण करके ही कोइ वस्तु उत्पन्न होवे वा कुछ बनाया जाएं, जैसाकि मिट्टी से घड़ा बनता है, उसे 'उपादानकारण' कहते हैं।

३४. **निमित्त कारण**—जो बनानेवाला है, जैसे कुम्हार घड़े को बनाता है, इस प्रकार के पदार्थों को 'निमित्त कारण' कहते हैं।

३५. **साधारणकारण**—जैसेकि चाक, दण्ड, आदि और दिशा, आकाश तथा प्रकाश हैं, इनको 'साधारण- कारण' कहते हैं।

३६. **कार्य**—जो किसी पदार्थ के

संयोगविशेष से स्थूल होके काम में आता है, अर्थात् जो करने के योग्य है, वह उस कारण का '**कार्य**' है।

३७. **सृष्टि**—जो कर्त्ता की रचना से कारणद्रव्य किसी संयोगविशेष से अनेक प्रकार कार्यरूप होकर वर्त्तमान में व्यवहार करने के योग्य होता है, वह '**सृष्टि**' कहलाती है।

३८. **जाति**—जो जन्म से लेकर मरणपर्य्यन्त बनी रहे, जो अनेक व्यक्तियों में एक स्वरूप से प्राप्त हो, जो ईश्वरकृत अर्थात् मनुष्य, गाय, अश्व और वृक्षादि समूह हैं, वे '**जाति**' शब्दार्थ से लिए जाते हैं।

३९. **मनुष्य**—अर्थात् जो विचार के बिना किसी काम को न करे, उसका नाम '**मनुष्य**'

है।

४०. **आर्य**– जो श्रेष्ठ स्वभाव, धर्मात्मा, परोपकारी, सत्यविद्यादि गुणयुक्त और आर्यवर्त्त देश में सब दिन से रहनेवाले हैं, उनको '**आर्य**' कहते हैं।

४१. **आर्यवर्त्त देश**– हिमालय, विन्धाचल, सिन्धु नदी और ब्रह्मपुत्रा नदी, इन चारों के बीच और जहाँ तक इनका विस्तार है, उनके मध्य में जो देश है, उसका नाम '**आर्यवर्त्त देश**' है।

४२. **दस्यु**– अनार्य, अर्थात् जो अनाड़ी, आर्यों के स्वभाव और निवास से पृथक् डाकू, चोर, हिंसक जो दुष्ट मनुष्य है, वह '**दस्यु** कहलाता है।

४३. **वर्ण**—जो गुण और कर्मों के योग से ग्रहण किया जाता है, वह '**वर्ण**' शब्दार्थ से लिया जाता है।

४४. **वर्ण के भेद**—जो ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रादि हैं, वे '**वर्ण के भेद**' कहलाते हैं।

४५. **आश्रम**—जिनमें अत्यन्त परिश्रम करके उत्तम गुणों का ग्रहण और श्रेष्ठ काम किये जायें, उनको '**आश्रम**' कहते हैं।

४६. **आश्रम के भेद**—जो सद्विद्यादि शुभ गुणों का ग्रहण तथा जितेन्द्रियता से आत्मा और शरीर के बल को बढ़ाने के लिए ब्रह्मश्रम, जो सन्तानोत्पत्ति और विद्यादि सब व्यवहारों को सिद्ध करने के लिए गृहाश्रम,

जो विचार के लिए वानप्रस्थ और सर्वोपकार करने के लिए संन्यासाश्रम होता है, ये चार 'आश्रम' कहलाते हैं।

४७. **यज्ञ**—जो अग्निहोत्र से लेके अश्वमेधपर्यन्त शिल्प-व्यवहार और पदार्थ-विज्ञान है जोकि जगत् के उपकार के लिए किया जाता है, उसको '**यज्ञ**' कहते हैं।

४८. **कर्म**—जो मन, इन्द्रिय और शरीर में जीव चेष्टा-विशेष करता है सो '**कर्म**' कहलाता है। वह शुभ, अशुभ और मिश्र भेद से तीन प्रकार का है।

४९. **क्रियमाण कर्म**—जो वर्त्तमान में किया जाता है, सो '**क्रियमाण कर्म**' कहलाता है।

५०. **सञ्चित**– जो क्रियमाण का संस्कार ज्ञान में जमा होता है, उसको '**सञ्चित**' कहते हैं।

५१. **प्रारब्ध**– जो पूर्व किये हुए कर्मों के सुख–दुःख–रूप फल का भोग किया जाता है, उसको '**प्रारब्ध**' कहते हैं।

५२. **अनादि पदार्थ**– जो ईश्वर, जीव और सब जगत् का कारण=प्रकृति है, ये तीन '**स्वरूप से अनादि**' हैं।

५३. **प्रवाह से अनादि पदार्थ**– जो कार्य जगत्, जीव के कर्म और जो इनका संयोग–वियोग है, ये तीन '**प्रवाह से अनादि**' हैं।

५४. **अनादि का स्वरूप**– जो कभी

न उत्पन्न हुआ हो, जिसका कोई कारण न होवे, अर्थात् जो सदा से स्वयंसिद्ध हो वह 'अनादि' कहलाता है।

५५. **पुरुषार्थ**— अर्थात् सर्वथा आलस्य छोड़के उत्तम व्यवहारों की सिद्धि के लिए मन, शरीर और वाणी से जो अत्यन्त उद्योग करना है, उसको '**पुरुषार्थ**' कहते हैं।

५६. **पुरुषार्थ के भेद**— जो अप्राप्त वस्तु की इच्छा करनी, प्राप्त का अच्छी प्रकार रक्षण करना, रक्षित को बढ़ाना और बढ़े हुए पदार्थों का सत्यविद्या की उन्नति में तथा सबके हित करने में खर्च करना है, इन चार प्रकार के कर्मों को '**पुरुषार्थ के भेद**' कहते हैं।

५७. **परोपकार**— अर्थात् अपने सब

सामर्थ्य से दूसरे प्राणियों के सुख होने के लिए जो तन, मन, धन से प्रयत्न करना है, वह **'परोपकार'** कहलाता है।

५८. **शिष्टाचार**—जिसमें शुभ गुणों का ग्रहण और अशुभ गुणों का त्याग किया जाता है, वह 'शिष्टाचार' कहलाता है।

५९. **सदाचार**—जो सृष्टि से लेके आजपर्यन्त सत्पुरुषों का वेदोक्त आचार चला आया है कि जिसमें सत्य का ही आचरण और असत्य का परित्याग किया है, उसको 'सदाचार' कहते हैं।

६०. **विद्यापुस्तक**—जो ईश्वरोक्त, सनातन, सत्यविद्यामय चार वेद हैं, उनको **'विद्यापुस्तक'** कहते हैं।

६१.**आचार्य**— जो श्रेष्ठ आचार को ग्रहण कराके, सब विद्याओं को पढ़ा देवे, उसको '**आचार्य**' कहते हैं।

६२.**गुरु**— जो वीर्यदान से लेके भोजनादि कराके पालन करता है, इससे पिता को '**गुरु**' कहते हैं, और जो अपने सत्योपदेश से हृदय के अज्ञानरूपी अन्धकार को मिटा देवे, उसको भी '**गुरु**' अर्थात् आचार्य कहते हैं।

६३.**अतिथि**— जिसकी आने और जाने की कोई भी निश्चित तिथि न हो तथा जो विद्वान् होकर प्रश्नोत्तरों के द्वारा उपदेश करके सब जीवों का उपकार करता है, उसको '**अतिथि**' कहते हैं।

६४. **पञ्चायतनपूजा**—माता, पिता, आचार्य, अतिथि और परमेश्वर को यथायोग्य सत्कार करके प्रसन्न करना है, उसको '**पञ्चायतनपूजा**' कहते हैं।

६५. **पूजा**—जो ज्ञानादि गुणवाले का यथायोग्य सत्कार करना है, उसको '**पूजा**' कहतें हैं।

६६. **अपूजा**—जो ज्ञानादि गुण रहित जड़ पदार्थ का और सत्कार के योग्य नहीं है उसका जो सत्कार करना है वह '**अपूजा**' कहलाती है।

६७. **जड़**—जो वस्तु ज्ञानादि गुणों से रहित है, उसको '**जड़**' कहते हैं।

६८. **चेतन**—जो पदार्थ ज्ञानादि गुणों से

युक्त है, उसको '**चेतन**' कहते हैं।

६९. **भावना**—जो जैसी चीज़ हो विचार से उसमें वैसा ही निश्चय करना कि जिसका विषय भ्रमरहित हो, अर्थात् जैसे को तैसा ही समझ लेना, उसको '**भावना**' कहते हैं।

७०. **अभावना**—जो भावना से उल्टी हो, अर्थात् मिथ्याज्ञान से अन्य में अन्य निश्चय मान लेना है, जैसे जड़ में चेतन और चेतन में जड़ का निश्चय कर लेते हैं, उसको '**अभावना**' कहते हैं।

७१. **पण्डित**—जो सत्-असत् को विवेक से जाननेवाला, धर्मात्मा, सत्यवादी, सत्यप्रिय, विद्वान् और सबका हितकारी है, उसको '**पण्डित**' कहते हैं।

७२. **मूर्ख**— जो अज्ञान, हठ, दुराग्रहादि दोषसहित है, उसको '**मूर्ख**' कहते हैं।

७३. **ज्येष्ठकनिष्ठव्यवहार**— जो बड़े और छोटों का यथायोग्य परस्पर मान्य करना है, उसको '**ज्येष्ठ-कनिष्ठव्यवहार**' कहते हैं।

७४. **सर्वहित**— जो तन, मन और धन से सबके सुख बढ़ानें में उद्योग करना है, उसको '**सर्वहित**' कहते हैं।

७५. **चोरीत्याग**— जो स्वामी की आज्ञा के बिना किसी के पदार्थ का ग्रहण करना है वह 'चोरी' और उसको छोड़ना '**चोरीत्याग**' कहलाता है।

७६. **व्यभिचारत्याग**— जो अपनी स्त्री के विना दूसरी स्त्री के साथ गमन करना और

अपनी स्त्री को भी ऋतुकाल के विना वीर्यदान देना तथा अपनी स्त्री के साथ भी वीर्य का अत्यन्त नाश करना और युवावस्था के विना विवाह का करना है, यह सब व्यभिचार कहलाता है। उसको छोड़ देने का नाम 'व्यभिचार त्याग' है।

७७. **जीव का स्वरूप**—जो चेतन, अल्पज्ञ, इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, सुख, दुःख और ज्ञान गुणवाला तथा नित्य है, वह 'जीव' कहलाता है।

७८. **स्वभाव**—जिस वस्तु का जो स्वभाविक गुण है, जैसे कि अग्नि में रूप और दाह, अर्थात् जब तक वह वस्तु रहे तब तक उसका वह गुण भी नहीं छूटता, इसलिए

इसको '**स्वभाव**' कहते हैं।

७९. **प्रलय**— जो कार्य-जगत् का कारणरूप होना है, अर्थात् जगत् का करनेवाला ईश्वर जिन-जिन कारणों से सृष्टि बनाता है, और अनेक कार्यों को रचके यथावत् पालन करके पुनः कारणस्वरूप रखता है, उसका नाम '**प्रलय**' है।

८०. **मायावी**— जो छल-कपट स्वार्थ में ही प्रसन्नता, दम्भ, अहङ्कार, शठतादि दोष हैं इनको माया कहते हैं जो मनुष्य इनसे युक्त हो, वह '**मायावी**' कहलाता है।

८१. **आप्त**— जो छलादि दोषरहित, धर्मात्मा, विद्वान्, सत्योपदेष्टा, सबपर कृपादृष्टि से वर्त्तमान होकर, अविद्यान्धकार का नाश

करके अज्ञानी लोगों के आत्माओं में विद्यारूप सूर्य का प्रकाश सदा करे, उसको 'आप्त' कहते हैं।

८२.**परीक्षा**— जो प्रत्यक्षादि आठ प्रमाण, वेदविद्या, आत्मा की शुद्धि और सृष्टिक्रम से अनुकूल विचारके सत्यासत्य को ठीक-ठीक निश्चय करना है, उसको 'परीक्षा' कहते हैं।

८३. **आठ प्रमाण**— प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान, शब्द, ऐतिह्य, अर्थापत्ति, सम्भव और अभाव ये 'आठ प्रमाण' हैं। इनही से सब सत्यासत्य का यथावत् निश्चय मनुष्य कर सकता है।

८४.**लक्षण**— जिससे लक्ष्य जाना जाए, जो कि उसका स्वभाविक गुण है, जैसे कि

रूप से अग्नि जाना जाता है, इसलिए उसको 'लक्षण' कहते हैं।

८५. **प्रमेय**—जो प्रमाणों से जाना जाता है, जैसेकि आँख का प्रमेय रूप अर्थ है, जोकि इन्द्रियों से प्रतीत होता है, उसको 'प्रमेय' कहते हैं।

८६. **प्रत्यक्ष**—जो प्रसिद्ध शब्द आदि पदार्थों के साथ श्रोत्रादि इन्द्रिय और मन के निकट सम्बन्ध से ज्ञान होता है, उसको 'प्रत्यक्ष' कहते हैं।

८७. **अनुमान**—किसी पूर्व दृष्ट पदार्थ के एक अङ्ग को प्रत्यक्ष देखके पश्चात् उसके अदृष्ट अङ्गों का जिससे यथावत् ज्ञान होता है, उसको 'अनुमान' कहते हैं।

८८.**उपमान**— जैसे किसी ने किसीं से कहा कि गाय के समतुल्य नील-गाय होती है, ऐसे किसी सादृश्य उपमा से जो ज्ञान होता है उसकों 'उपमान' कहते हैं।

८९.**शब्द**— जो पूर्ण आप्त परमेश्वर और पूर्वोक्त आप्त मनुष्य का उपदेश है, उसी कों 'शब्द' प्रमाण कहते हैं।

९०.**ऐतिह्य**— जो शब्द प्रमाण के अनुकूल हो, जोकि असम्भव और झूठ लेख न हो, उसी कों 'ऐतिह्य' इतिहास कहते हैं।

९१.**अर्थापत्ति**— जो एक बात के कहने से दूसरी विना कहे समझी जाए, उसको 'अर्थापत्ति' कहते हैं।

९२.**सम्भव**— जो बात प्रमाण, युक्ति

और सृष्टिक्रम से युक्त हो, वह कहलाता है।

९३. **अभाव**–जैसे किसी ने किसी से कहा कि तू जल ले-आ। उसने वहाँ देखा कि यहाँ जल नहीं है, परन्तु जहाँ जल है वहाँ से ले आना चाहिए। इस अभावनिमित्त से जो ज्ञान होता है उसको '**अभाव**'कहते हैं।

९४. **शास्त्र**–जो सत्य विद्याओं के प्रतिपादन से युक्त हो और जिस करके मनुष्यों को सत्य-सत्य शिक्षा हो, उसको '**शास्त्र**' कहते हैं।

९५. **वेद**–जो ईश्वरोक्त, सत्य विद्याओं से युक्त, ऋक् संहितादि चार पुस्तके हैं कि

जिनसे मनुष्यों को सत्यासत्य ज्ञान होता है, उनको **'वेद'** कहते हैं।

९६. **पुराण**—जो प्रचीन ऐतरेय, शतपथ-ब्राह्मणादि ऋषि-मुनि-कृत सत्यार्थ पुस्तक हैं, उन्हीं को 'पुराण, इतिहास, कल्प, गाथा और नाराशंसी' कहते हैं।

९७. **उपवेद**—जो आयुर्वेद वैद्यक शास्त्र, जो धनुर्वेद शस्त्रास्त्र विद्या और राजधर्म, जो गान्धर्ववेद गानशास्त्र और जो अर्थवेद शिल्पशास्त्र हैं, इन चारों को **'उपवेद'** कहते हैं।

९८. **वेदाङ्ग**—जो शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द और ज्योतिष आर्ष सनातन शास्त्र हैं, इनको **'वेदाङ्ग'** कहते हैं।

९९. **उपाङ्ग**— जो ऋषि-मुनि-कृत मीमांसा, वैशेषिक, न्याय, योग, सांख्य और वेदान्त छः शास्त्र हैं, इनको उपाङ्ग' कहते हैं।

१००.**नमस्ते**— मैं तुम्हारा मान्य करता हूँ।

वेदरामाङ्कचन्द्रेऽब्दे विक्रमार्कस्य भूपतेः।
नभस्येसितसप्तम्यां सौम्ये पूर्तिमगादियम्॥

श्रीयुत महाराज विक्रमादित्यजी के १९३४ के संवत् में श्रावण महीने के शुक्लपक्ष ७ सप्तमी बुधवार के दिन स्वामी दयानन्द सरस्वतीजी नें आर्यभाषा में सब मनुष्यों के हितार्थ यह आर्योद्देश्यरत्नमाला पुस्तक प्रकाशित किया।

आर्यसमाज के नियम

१. सब सत्य विद्या और जो पदार्थ विद्या से जाने जाते हैं, उन सब का आदि मूल परमेश्वर है ।

२. ईश्वर सच्चिदानन्द-स्वरूप, निराकार, सर्वशक्तिमान्, न्यायकारी, दयालु, अजन्मा, अनन्त, निर्विकार, अनादि, अनुपम, सर्वाधार, सर्वेश्वर, सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामी, अजर, अमर, अभय, नित्य, पवित्र और सृष्टिकर्ता है। उसी की उपासना करनी योग्य है ।

३. वेद सब सत्यविद्याओं का पुस्तक है । वेद का पढ़ना-पढ़ाना और सुनना-सुनाना सब आर्यों का परम धर्म है ।

४. सत्य के ग्रहण करने और असत्य के छोड़ने में सर्वदा उद्यत रहना चाहिये ।

५. सब काम धर्मानुसार, अर्थात् सत्य और असत्य का विचार करके करने चाहिये ।

६. संसार का उपकार करना इस समाज का मुख्य उद्देश्य है, अर्थात् शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक उन्नति करना।

७. सब से प्रीति-पूर्वक, धर्मानुसार, यथायोग्य वर्तना चाहिये ।

८. अविद्या का नाश और विद्या की वृद्धि करनी चाहिये ।

९. प्रत्येक को अपनी ही उन्नति से सन्तुष्ट न रहना चाहिये । किन्तु सब की उन्नति में अपनी उन्नति समझनी चाहिये ।

१०. सब मनुष्यों को सामाजिक सर्व-हितकारी नियम पालने में परतन्त्र रहना चाहिये । और प्रत्येक हितकारी नियम में सब स्वतन्त्र रहें ।

॥ ओ३म् ॥





श्री देवकीनन्दनजी गुप्ता श्रीमती कल्पनाजी गुप्ता

मोहन गार्डन, उत्तम नगर, नई दिल्ली–५९

आपके आर्थिक सहयोग स्वरूप इस पुस्तिका की ५००० प्रतियाँ २००/– रुपये सैंकड़ा में विक्रय की जा रही हैं।

—प्रभाकरदेव आर्य